स्वामी विवेकानंद के अमेरिका में प्रथम भाषण पर विशेष

बचपन से जिज्ञासु नरेंद्र किसी भी प्रमाण के बिना किसी बात को नहीं मानता था। वह अनेक संतो के पास जाता और स्पष्ट शब्दों में पूछता कि क्या आपने ईश्वर को देखा है ? किसी के उत्तर से वह संतुष्ट नहीं हो पाया। किंतु रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में आते ही उसकी जिज्ञासा शांत होने लगी। जैसा उत्तर उसे परमहंस जी से मिला वैसा स्पष्ट उत्तर कहीं नहीं मिला। गुरु और शिष्य का संबंध निरंतर प्रगाढ़ होता गया। जैसे परमहंस जी नरेंद्र की राह देख रहे हों ऐसा व्यवहार उन्होंने पहली बार ही दर्शाया था। किंतु एक समय ऐसा आया जब गुरु परमहंस जी अपने समस्त शिष्यों और मठ की जिम्मेदारी नरेंद्र को देकर इस संसार से प्रयाण कर गए। सन्यासी नरेंद्र अब विविदिशानंद हो गए। उनके मस्तिष्क में अनेक प्रकार के द्वंद चलते रहे थे। व्यक्तिगत आत्म उन्नति और समाधि सुख की ओर जाए अथवा संसार की सेवा की तरफ जाए। इस द्वंद में ही उन्होंने संपूर्ण भारत का पैदल ही दो बार भ्रमण किया। भ्रमण के दौरान भारत की अत्यंत दयनीय अवस्था को वे देखते गए। उन्होंने चिंतन किया कि भारत गौरवशाली, वैभवशाली स्थिति से इतना पतन की अवस्था में किस प्रकार आ गया।

भारत भ्रमण के दौरान ही खेतड़ी प्रवास पर थे। वहीं से वे विविदिशानंद से स्वामी विवेकानंद कहलाये। इस भ्रमण के दौरान ही वे भारत के दक्षिण के अंतिम छोर कन्याकुमारी पहुंचे। वे भारत पुत्रों की दरिद्रता

से व्यकुल थे। भारत के दक्षिण छोर कन्याकुमारी जहां भारत माता के चरण है, वे भारत माता के चरणों में बैठकर चिंतन के गहरे सागर में गोता लगाने लगे। वे भारत के वर्तमान और भविष्य का दर्शन कर रहे थे। भारत के पतन की जड़ों को ढूंढ रहे थे। इस संत ने दिव्य दृष्टि से यह जाना कि कैसे भारत गौरवशाली शिखर से पतन की गहरी खाई में गिर गया। यहां उनका महीनों से चला विचार मंथन पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

वे छलकते आंसुओं से समुद्र की लहरों पर टकटकी लगाए हुए बैठे थे और ह्रदय में मां से याचना कर रहे थे। इसी क्षण से उनका जीवन भारत मां की सेवा में समर्पित हो गया। लेकिन विशेष रूप से उपेक्षित, भूखे, तरसते, पीड़ित लाखों दरिद्र नारायण के लिए। स्वामी विवेकानंद ने देखा कि वह धर्म जिसमें निर्धनता और पीड़ा के प्रति संवेदना ना हो वह एक सूखे तिनके के समान है। इस प्रकार कन्याकुमारी में प्राप्त दिव्य दृष्टि ने उनमें देशभक्त और देवदूत दोनों के गुणों का एक सममुच्य उतपन्न कर दिया।

अपने भाषणों में बोलते हुए उन्होंने अनेक बार कहा भी है कि मानवता में दिव्यता के दर्शन के बाद अहंकार का कोई स्थान नहीं रहता है। इसका बोध होने के पश्चात किसी के प्रति घृणा, द्वेष, करुणा आदि का
भाव नहीं रहता। नर सेवा करके उसमें नारायण का प्रतिरूप देखकर ह्रदय पवित्र हो जाता है और इस सत्य की अनुभूति हो जाती है कि वह ज्ञान विद्यमान और परमानंद है। उन्होंने परोपकार को श्रेष्ठ धर्म माना है। उन्होंने कहा है परोपकार और मन की शुद्धता भगवान की पूजा का सारांश है। जो निर्धन में, कमजोर में, और रोगी में शिव के दर्शन करता है, वह वास्तव में शिव आराधना करता है और केवल शिव की कल्पना करता है।

25, 26 व 27 दिसंबर 1893 में जहां उन्होंने कन्याकुमारी में चिंतन मनन किया था, वहां आज भव्य स्मारक खड़ा है।

कन्याकुमारी में चिंतन मनन के पश्चात उन्होंने निश्चय किया कि वे अमेरिका में हो रही धर्म संसद में भाग लेंगे। किंतु इतनी दूर की यात्रा और अत्यधिक खर्च की व्यवस्था सरल कार्य नहीं था। उनके अनेक

शिष्य साथियों ने धन संग्रह किया भी। किंतु भूखे निर्धन देशवासियों को देखकर उन्होंने वह धन वहीं पर सहायतार्थ लगा दिया। इसके पश्चात महाराज अजीतसिंह एवं अन्य के सहयोग से उनकी यात्रा प्रारंभ हुई। लेकिन मार्ग की कठिन जलवायु और महंगे खर्च का आभास ना था। इसलिए अनेक कष्टों को सहते हुए, ईश्वरीय सहायता से धर्म संसद में उपस्थित हो गए। धर्म संसद की यात्रा उनकी आशा निराशा के बीच झूलती हुई यात्रा थी। लेकिन स्वामी अपने ठाकुर को हृदय में धारण किए, अडिग अविचल चलते रहे- चलते रहे।

11 सितंबर 1893 सुबह 10:00 का समय था। धर्म संसद के अध्यक्ष बॉनी और कार्डिनल गिब्बन्स सभा में उपस्थित हुए। स्वामी जी कुछ घबराए हुए थे। उनकी उनकी जीभ सूखे होठों को गीला करने का प्रयत्न कर रही थी। मंच के केंद्र में पश्चिमी संसार के रोमन कैथोलिक चर्च के सबसे बड़े धर्माधिकारी कार्डिनल गिब्बन्स बैठे थे। उनकी दाएं और बाएं पूर्वी देशों के प्रतिनिधि बैठे थे। वहां ब्रह्म, बुद्ध और मोहम्मद के अनुयायियों के बीच में स्वामी विवेकानंद भी बैठे थे। स्वामी जी का नयनाभिराम चटक भगवा परिधान, राजस्थानी पगड़ी, ध्यानाकर्षक नयन नक्श और ताम्बई वर्ण उस भीड़ में भी छुप नहीं रहा था। उनके साथ भारत से अनेक प्रतिनिधि भी बैठे थे।

मुंबई से आए ब्रह्म समाज के प्रतिनिधि नागरकर थे, अगले व्यक्ति लंका के बौद्ध प्रतिनिधि धर्मपाल थे, फिर कोलकाता से आए ब्रह्म समाज के ही प्रताप चंद्र मजूमदार थे, उसी भीड़ में जैन मत के प्रतिनिधि गांधी थे और ब्रह्मविद्या मत के चक्रवर्ती और स्वयं श्रीमती एनी बेसेंट थी। सभागार में 7000 से अधिक व्यक्ति थे। स्वामी जी ने कभी इतनी बड़ी सभा में भाषण नहीं दिया था और ना ही धुरंधर धर्म अधिकारियों के मध्य में कभी बैठे थे। वे तो भारत की धूल मिट्टी में घूमने वाले, भिक्षा मांग कर खाने वाले मनमौजी सन्यासी थे। उनके होंठ सूखते जा रहे थे। सभा के प्रथम वक्ता ग्रीक चर्च के आर्चबिशप जांटे थे। सभी के भाषण पूर्व लिखित थे, बहुत तैयारी से आए थे। लेकिन स्वामी जी ऐसा कुछ तय करके नहीं आए थे। स्वामी जी अपने स्थान पर अंतर्मुखी बैठे थे, जैसे वे उपासना कर रहे हो। उनके साथ वाली कुर्सी पर फ्रांसीसी पादरी जी. वॉनी मोरी बैठे थे। तभी मंच से स्वामी जी का नाम पुकारा गया। उनके पास बैठे पादरी ने कहा इस बार भी आप कुछ नहीं बोलेंगे ? वे बोले आप तीन बार अपनी बारी छोड़ चुके हैं। स्वामी जी ने अपनी घबराहट को समेटा मन ही मन देवी सरस्वती को नमन किया। आंखें खोली, मुस्कुरा कर अपने स्थान से उठकर व्यास पीठ पर आ गए। डॉ बेरोज ने उनका परिचय दिया। उनका चेहरा आवेश से धधक रहा था। सारे हॉल में था सन्नाटा था।

वे बोले अमरीकी बहनों और भाइयों….. उनका वह संबोधन हॉल में जैसे विद्युत धारा के समान फेल गया। पूरे हाल में तालियों की गड़गड़ाहट गूंज उठी। लोग अपने स्थान पर उठकर खड़े हो गए।

अध्यक्ष चकित होकर इधर-उधर देखने लगे 2 मिनट तक आगे बोलने का स्वामी जी प्रयत्न करते रहे, किंतु कोलाहल में कुछ भी बोलना संभव नहीं था। तालियां कुछ धीमी पड़ी तो उन्होंने बोलना प्रारंभ किया।

ऐसा क्या था उनके शब्दों में जो वहां श्रोताओं में इतनी हलचल उत्पन्न कर गया ? अमेरिकी भाइयों और बहनों यह सम्बोधन कोई पहली बार नहीं बोला गया था। इससे पूर्व भी चार वक्ताओं ने कहा था। किंतु

इतना प्रभावकारी नहीं रहा। क्या था स्वामी विवेकानंद के शब्दों में जो 7000 से अधिक श्रोताओं को अंदर तक हिला गया ? दरअसल स्वामी जी के शब्दों में संपूर्ण भारत के गौरवमई इतिहास, संस्कृति, परंपराओं, मान्यताओं का गौरव था और साथ ही वर्तमान में भारत की जनता की दुरावस्था, निर्धनता, पीड़ा, असहायता और दरिद्रता की पीड़ा थी, जो उन्होंने भ्रमण के दौरान अनुभव की थी, वह हृदय की गहराइयों तक समाई हुई थी। उन्ही दर्द और गर्व मिश्रित शब्दों का जादुई असर था जो हृदय की गहराइयों से निकले थे और सीधे श्रोताओं के कानों से होते हुए हृदय तक उतर कर उसे झंकृत कर रहे थे।

उन्होंने बोलना प्रारंभ किया- जिस आदर और स्नेह से आप ने हम लोगों का स्वागत किया है, उससे मेरा हृदय कृतज्ञता से भर उठा है। गौतम जिसके एक सदस्य मात्र थे। संसार की प्राचीनतम ऋषि परंपरा की ओर से मैं आप सब का धन्यवाद करता हूं। जैन और बौद्ध मत जिसकी शाखाएं मात्र हैं। संसार के धर्मों की उस जननी की ओर से मैं आपके प्रति आभार प्रकट करता हूं, और सारी जातियों और संप्रदायों के करोड़ों हिंदुओं की ओर से मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। यह पहली बार था जिसमें किसी विद्वान वक्ता ने हिंदू धर्म में व्याप्त विभिन्न मतों संप्रदायों को समग्र एक मंच पर लाकर हिंदू धर्म, एकमात्र धर्म की विशालता को प्रकट कर दिया।

वे आगे कहते हैं मैं उन वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं, जिन्होंने इस सभा मंच पर कहा कि यह दूर-दूर से आए विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि यहां जिस सहिष्णुता का अनुभव करेंगे उसे अपने देशों में ले जाएंगे। इस विचार के लिए मैं उनका आभारी हूं। मुझे उस धर्म से संबंधित होने का गौरव प्राप्त है जिसने संसार को सहिष्णुता और सर्वस्वीकृति का पाठ पढ़ाया। हम ना केवल संसार में सबके प्रति सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, वरन सारे धर्मों को सत्य मानते हैं। मैं आपको यह बताते हुए गर्व का अनुभव करता हूं कि मेरा संबंध उस धर्म से है, जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में अंग्रेजी के शब्द एक्सक्लुजन का अनुवाद नहीं हो सकता। उन्होंने हिंदू धर्म की सहिष्णुता से आगे बढ़कर सब को स्वीकार करना अर्थात सर्वस्वीकृति के बारे में बताया। उन्होंने बताया कि सभी धर्मों को हम हिंदू सत्य मानते हैं। किसी को भी अलग नहीं मानते। इसलिए उन्होंने कहा कि संस्कृत में एक्सक्लूजन का अनुवाद नहीं हो सकता। हम हिन्दू केवल इंक्लूजन पर विश्वास करते है।

वे आगे कहते हैं मुझे उस राष्ट्र का सदस्य होने का गर्व प्राप्त है जिसने संसार के सारे धर्मों और देशों के उत्पीड़ित और निराश्रित लोगों को अपने यहां आश्रय दिया है।

हमें गर्व है कि हम ने इजराइल के पवित्र अवशेषों को अपने हृदय में छिपाकर रखा है। वे उस समय हमारे पास आए थे जब रोमन अत्याचारों ने उनके पवित्र मंदिरों को ध्वस्त किया था। मुझे उस धर्म से संबंधित होने का गर्व है जिसने महान संस्कृति के अवशेषों को आश्रय दिया और आज भी उनका पालन कर रहे हैं। यहां स्वामी जी ने बताया कि एकमात्र भारत अर्थात हिंदुस्तान यानी हिंदूराष्ट्र ही ऐसा धर्म और स्थान है जहां पर प्रत्येक पीड़ित को जो विश्व से आए हैं, आश्रय दिया गया है। सभी को अपने अनुसार धर्म को मानने की यहां पर स्वतंत्रता है और उन्हें आश्रय दिया जाता है। इजराइल से आने वाले यहूदी हो चाहे पारस/पर्सिया से आनेवाले पारसी हो सभी धर्मों को भारत में शरण मिली है। उन्हें अपने अनुसार जीवन जीने का अधिकार मिला है। स्वतंत्रता मिली है। इसलिए वे इस बात पर गर्व करते हैं।

आगे कहते हैं- यह सभा जो संसार की आज तक की सर्वश्रेष्ठ सभाओं में से एक है, अपने आप में यह संकेत है, गीता में उच्चारित उस अद्भुत उपदेश की घोषणा है कि- हे अर्जुन जो भक्त, मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको इसी प्रकार भजता हूं। क्योंकि सभी मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं। इस प्रकार उन्होंने सभी धर्मों के, पंथ के, सम्प्रदाय अलग अलग होते हुए भी गंतव्य एक होने की ओर संकेत कर दिया। वे आगे बोले सांप्रदायिकता, धर्मांधता और उनकी भयंकर संतान कट्टरवादीता इस संसार पर बहुत राज्य कर चुकी है।

उन्होंने पृथ्वी पर हिंसा का तांडव किया है। संसार पर रक्त की वर्षा की है। सभ्यताओं का नाश किया है और राष्ट्रों को हताशा के सागर में डुबाया है। किंतु अब उनका अंतकाल आ गया है और मैं पूरी निष्ठा से विश्वास करता हूं कि आज प्रात: संसार के विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों के सम्मान में जो घण्टध्वनी हुई थी, वह कट्टरवादिता की मृत्यु की घोषणा थी। वह खड़ग अथवा लेखनी से किए जाने वाले अत्याचारों के लिए और विभिन्न मार्गों से एक ही लक्ष्य की ओर जाते हुए भाइयों के मध्य वर्तमान कठोरताओं की मृत्यु की घोषणा थी। इस प्रकार उन्होंने कट्टरवादीता पर अपना स्पष्ट विचार रखा। अपने संप्रदाय या मत को किसी अन्य पर जबरन थोपना ही कट्टरवादीता है। चाहे वह वैचारिक हो अथवा शारीरिक। स्वामी जी ने उसकी निंदा की है। सभा में तालियों का झंझावात उत्पन्न हो गया...... स्वामी जी अपने स्थान पर आकर बैठ गए। इसके पश्चात 19 सितंबर को उनका मुख्य भाषण हुआ था।

भाषण के पश्चात स्वामी जी की चारों ओर जय जयकार और प्रसिद्धि हो गई। किंतु वे अपने प्रति संतुष्ट नहीं थे। नाम, यश और अपार जन समर्थन उन्हें प्रभावित नहीं कर सका। उल्टा उस वैभव ने उन्हें सावधान किया। वहां भी वे भारत के वंचितों की चिंता करने वाले पहले जैसे सन्यासी ही रहे। पहली रात में ही बिस्तर पर लेटे लेटे भारत की गरीबी और अमेरिका की विपुल सम्पन्नता की भयानक तुलना ने उन्हें उत्पीड़ित किया। अमेरिका के एक समाचार पत्र ने लिखा :- उनकी देशभक्ति ओजस्विता पूर्ण थी। जिस प्रकार वह मेरा देश पुकारते हैं, वह बहुत मर्मस्पर्शी एवं हृदयस्पर्शी होता है। अमेरिका से वापस आने के बाद स्वामी जी ने अपने देश में संगठन निर्माण के विषय में अनेक बार मार्गदर्शन किया। एक बार उन्होंने कहा हमारे मन में संगठन क्षमता का पूर्ण अभाव है। लेकिन इसका प्रतिभाशाली संप्रेषण करना होगा और इसका महान सूत्र है, अपनी आत्मा में सदैव अपने भाई बंधुओं के विचारों को स्वीकार करने हेतु तैयार रहो और उनसे सामंजस्य दिखाओ। यही सफलता का रहस्य है। संगठन केवल सांसारिक नहीं है। जरा विचार करो कि केवल चार करोड़ अंग्रेज कैसे 30 करोड़ लोगों पर यहां राज कर रहे हैं। इसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण क्या है ? चार करोड़ लोगों ने अपनी इच्छाशक्ति को इकट्ठा करके एक सीमित शक्ति का प्रदर्शन किया और तुम्हारी 30 करोड़ लोगों की इच्छा शक्ति सबकी अलग-अलग थी। अत: भविष्य में महान भारत बनाने के लिए सबसे बड़ा रहस्य संगठन की शक्ति है। ऊर्जा का एकीकरण और इच्छा शक्तियों का संबंध है। वे कहते हैं मेरे मन में एक चमत्कारी संगठन सूक्त का उद्गम हो रहा है

[illegible]
[illegible]...

स्वामी जी का संपूर्ण चिंतन संगठन शक्ति के द्वारा भारत के दीन दुखियों की सेवा करने की और ही लगा

रहा। वे कहते थे जीवंत परमात्मा की सेवा करो वह नेत्रहीन, विकलांग, निर्धन, के रूप में आपके समक्ष विद्यमान हैं। तो फिर उससे अधिक महिमा पूर्ण आराधना का अवसर क्या हो सकता है। वे कहते हैं भारत का राष्ट्रीय आदर्श आत्मत्याग और सेवा है, इस आदत को सभी के हृदय में नसों में, प्रवाहित कर दो, बाकी सब कुछ अपने आप संभव हो जाएगा।

संगठन द्वारा उच्च चारित्रिक गुणवान व्यक्तियों का निर्माण और निर्मित व्यक्तित्वों द्वारा समाज में यथा आवश्यक सेवा के साथ समाजोत्थान यही सन्देश था स्वामी विवेकानंद जी का। आज संघ उसी मार्ग का निदर्शक है और हर स्वयंसेवक पथिक है।

संकलन लेखन
मनमोहन पुरोहित (मनुमहाराज)
फलोदी राजस्थान
7023078881